बताओ ना अंकल

हुश्न तवस्सुम निहाँ

बताओ ना अंकल

अस्सी के दशक का वो पहला पहर रहा होगा... हाँ, पहला ही, कि मैं फ्रॉक समेटे तितलियों के पीछे भागी फिरती थी। दोनों कानों पे लंबी, दोहरी झूलती चोटियाँ कानों के ऊपर काले रिबन से गूंथकर बनाया गया फूल। मैदे सा गोरा, गोल चेहरा और निहायत मासूम नैन... नक्श। मेरी यह एक फेवरेट फ्रॉक थी जो मेरी मम्मी की नानी (मेरी परनानी) बंबई से लाई थीं। सुरमई नैलोन की फ्रॉक पर गुलाबी और सुर्ख रेशम

से काढ़े गए छोटे-छोटे गुलाब और धानी महीन पत्तियां। गुफ्फेवाली आस्तीन और गले में लंबी झालर... । खेलों में रुचिकर खेल गिल्ली... डंडा। कतु ये खेल मुझसे दूर ही रहा। जब पहली बार हमउम्र लड़कों के खेमे में गई और अपनी गिल्ली-डंडा खेलने की इच्छा बताई तो सब ठठा पड़े। 'ये छुई-मुई डंडा पकड़ेगी... '

मेरी काली आँखें थोड़ी भीगी मगर अपनी जन्मजात प्रवृत्ति के कारण संघर्ष से परे नहीं हटी। या शायद ये मेरी जिंदगी का पहला संघर्ष था। आखिर मैंने अपने एक सहपाठी जो मुझ पर मुग्ध रहा करता था, और जो उस खेमे का सर्वेसर्वा था, उसे सीढ़ी बनाई। फिर अथक प्रयत्न के बाद एक मौका हथिया लिया। ये जीवन का पहला ट्रायल था और मेरी योग्यता की पहली परीक्षा।

मैदान जब पहुँची, साँसें धौंकनी हो गईं डंडा थामा, मेरे एक हमउम्र दोस्त ने प्यार से मेरे गाल में चिकोटी ली और सभी 'वारी' जानेवाली मुस्कान लिए मुझे तकने लगे। क्षण भर को आँखें बंदकर मैंने मन ही मन खुदा का स्मरण किया, फिर गिल्ली ढलान पर सेट की और क्षण भर में ही गिल्ली व डंडे की टंकार फिजाँ में फैल गई। गिल्ली जैसे हवा ही हो गई। पूरी मित्रा मंडली खुशी से उछल पड़ी। मैं खुशी से फूली नहीं समा रही थी। पल भर को लगा मैं गिल्ली-डंडा मंडली की शहजादी हो गई। गिल्ली-डंडा गुरुओं ने खूब शबासी दी, फिर झुंड तितर-बितर हुआ कि सामने, दूर पर बने हुए बँगलेनुमा घर ने हमें ललकारा हमने चौंककर देखा उस घर के गेट पर एक सुंदर फिल्मी हीरोइन सी गोरी-चिट्टी, मैक्सी पहने मैडम खड़ी थीं।

उनके हाथ में गिल्ली थी। हम सब उधर ही बढ़ गए। नंदू आगे बढ़ा, 'आँटी, ये हमारी गिल्ली है दे दीजिए... '

कि वह बिजली सी तड़की 'तुम लोग ऐसे घटिया खेल खेलते हो, मेरे सिर में लग जाती तो... ?'

सब सहमकर पीछे हट गए। नंदू ने फिर काँपती आवाज में साहस जुटाया 'अ... अब ऐसा नहीं होगा आँटी, हम कहीं और खेलेंगे... '

'ठीक है, पहले, जिसने ये शॉट मारा है उसे मेरे सामने लाओ... ' मेरा जी चाहा, तितली से फुर्र हो जाऊँ किसी के छूने से पहले ही, मगर डर के मारे हाथ-पाँव-जुबान सब जवाब दे गए थे। सबने मुझे आगे कर दिया। मेरी शैशव-सूरत देख वह क्षण भर को असहज सी हो गईं, 'तुम... तुम लोग झूठ बोलकर निकलना चाहते हो, और इस भोली बिल्ली को पिटवाना चाहते हो।'

'नहीं आँटी... इसी ने... ' कई स्वर एक साथ लहराए।

'एक मिनट, क्यूँ गुड़िया... ये तुमने मारा... ?' वह झुककर मुझे गिल्ली दिखाती बोलीं।

मैं भंकुराई सी 'हाँ' में सिर हिला गई। मेरी इस भोली स्वीकृति पे उनका मन उमड़ गया जैसे। झट मुझे गोद में उठा लिया और मित्रों की तरफ गिल्ली उछालकर मुझे भीतर ले कर चली आईं। मैं किसी छोटी चिड़िया की भाँति भीतर ही भीतर काँप रही थी कि अब पिटाई होके रहेगी। जबकि मेरी मित्रा मंडली ने पीछे मुड़कर देखा तक नहीं कि मेरा क्या हाल बनाया जाता है।

मैडम ने मुझे ले कर बेड पर बैठा दिया फिर किचन में गईं और बिस्किट, संतरा, हलवा और टॉफी ले कर आईं, मेरे सामने रख दिया। मेरा मन हरक गया।

जरूर मेरे इतने अच्छे शॉट से खुश हो कर ये इनाम दिया जा रहा है। टॉफियां, बिस्किट मैंने फ्रॉक की जेबों में ठूँसी, जेब छोटी होने के कारण संतरा हाथ में ही लिए रही। हलुवा खाने लगी। वह पानी का गिलास मेरे पास रखते हुए बैठ गईं और बोलीं, 'बेटे, आप कितने अच्छे बच्चे हो, अच्छे बच्चे इतने गंदे खेल नहीं खेलते... आपके मम्मी-पापा खफा नहीं होते?'

'ऊंहू... उन्हें क्या पता, वे लोग कॉलेज जाते हैं... '

'आप स्कूल नहीं जाते... ?'

'जाती हूँ, बारह बजे आ जाती हूँ... '

'मम्मी-पापा?'

'शाम को।' मैं हलवे में मग्न थी।

'तुम यहाँ आ जाया करो, मैं तुम्हें अच्छी-अच्छी चीजें खिलाऊंगी, स्टोरिज सुनाऊँगी... '

'परियोंवाली' में पुलक उठी।

'हाँ, परियोंवाली... ' मैं चलने को हुई सामान बटोरकर, तो उनके साहब, यानि अंकल आ गए। मैं आँख चुराती भाग आई।

शाम को मैंने सारी रिपोर्ट मम्मी को दी, वह गिल्ली-डंडा खेलने पर तो ना बिफरी पर उस घर में मेरे जाने को सुन कर लाल हो गईं। बस-स,पिटाई नहीं हुई, बाकी सारे करम।

मैं रात भर ऊहापोह में करवटें बदलती रही। कितनी प्यारी सी वो आँटी हैं, परी जैसी कितनी प्यारी बातें... , कितना सारा प्यार... फिर जाने को मनाही क्यूँ क्षण भर को मेरा बालारुण मन बुझ गया। किंतु दूसरे दिन फिर गई। फिर रोज जाने लगी। जब तक आँटी नहीं आती, उन्हीं की दालान के गेट पर बैठी बाट जोहती रहती। आँटी-अंकल दोनों जने ही ऑफिस में काम करते थे। आँटी दोपहर में ही लौट आतीं। और अंकल शाम में आते। आँटी आते ही मेरे गाल थपथपातीं, फिर छोटी सी ताली से ताला खोलतीं... और मेरे साथ ही अंदर प्रवेश करतीं।

मैं इधर-उधर फुदकती रहती, या वह टी.वी. ऑन कर देतीं। फिर वह खाना लगातीं, और हम दोनों साथ ही खाते। फिर हमारी रागात्मकता ऐसी बढ़ी कि हमें एक-दूसरे की आदत ही हो गई। पापा को मेरी शिकायत आए दिन मिलती, मैं आए दिन हड़कायी जाती किंतु आँटी से मेरी आत्मीयता कम नहीं हुई। हस्बे मालूम में पहुँच जाती। उनकी आवाज की मिठास और प्यार के जादू ने ऐसा प्रभावित किया कि गिल्ली-डंडा का आकर्षण मुझे पुन बाँध ना सका। अब कोई प्रिय खेल नहीं रह गया था मेरा। क्योंकि लड़के सिर्फ यही खेलते थे, और लड़कियाँ सिर्फ गुड्डा-गुड़िया, जो मुझे सख्त नापसंद था। इस खेल की परिणति गुड्डा-गुड़िया के विवाह में होती, जो काफी उलझाऊ और अवांछित सी लगनेवाली प्रक्रिया थी। कुल मिलाकर ये खेल टेंशनाइज करता था। हाँ, एक अन्य मेरा सर्वप्रिय खेल था, जिसका लुत्फ एकांत में ही आता था मैं नोट बुक का एक पन्ना फाड़ उसे दोहरा करती। फिर दोनों कानों को विपरीत कोणों पर आधी-आधी दूरी से मोड़ देती। ऊपर बची पट्टियों को भी पीछे मोड़कर चपटी करती और दोनों तरफ के कोनों को पुनः विपरीत कोणों से मोड़कर इधर-उधर फंसा देती। अब तो कागज डब्बे सा बन जाता। दूसरा पन्ना फाड़कर रोल कर लेती और डिब्बे के मुँह पर उस पाइप का एक सिरा फंसा देती। अब उसमें छोटी-छोटी कबाड़ें, जैसे टूटी हुई चूड़ियों की किरचियाँ, मुरग्रगयों के पंख, सूखी पत्तियाँ पड़े-गिरे मोती आदि, जो भी मन को लुभा जाए, उस डिब्बे में डाल देती। फिर पाइप के दूसरे सिरे से डिब्बे में झाँकती, तो मैजिक दिखाई देता कागज के डिब्बे पर सूर्य की सुआबी पड़तीं तो चीजें झिलमिलातीं लगता बाइस्कोप में मुंबई देख रही हूँ। दौड़ती सरपट कारें, नभ छूते जहाज, मिथुन, जितेंद्र, सलमान, दिव्या, श्रीदेवी। थोड़ा उसे हिलाती, चीजें इधर-उधर होतीं और नजर आते ऊँचे पर्वत, झूलते देवदार, झीलें, फूल, तितलियाँ,

कभी-कभी नृत्य करतीं परियाँ भी नामुदार होतीं। बालमन जैसी कल्पनाएँ करता वैसा ही दृश्य आँखों के सामने उपस्थित हो जाता। मैं खुश हो जाती। कभी-कभी समीप लगे शीशम की झड़ती ऊँगलियों जैसी छीमियों पर कत्था-चूना लगा कर चबाती फिरती।

या फिर आँटी की ड्योढ़ी पर प्रतीक्षा करती हुई विचारों के घोड़े दौड़ाती आसमान छू जाती और कभी-कभी काठ के घोड़े दौड़ाती आरामशीन घूम आती। लेकिन ये सारे खेल एक तरफ। जो रस इनमें था, कहीं नहीं था। उनकी कहानियों में जब परियों के देश के राजकुमार का प्रसंग आता तो आँटी के साहब, यानि अंकल राजकुमारों के पैरहन में घोड़े पे सवार मेरे सामने उपस्थित हो जाते। अंकल थे ही इतने सुंदर, इतने कोमल इतने आकर्षक। गोरा-चिट्टा रंग, लंबा-छरहरा जिस्म, बॉब कट बाल आगे से ज्यादा घने व कर्ली। जो माथे तक गिरे रहते। जैसे आँखों के समंदरों पर घटाएँ झुकी हों। मखमली, नारंगी होंठ, सारंगी की धुन सी बारीक लहराती आवाज। कभी-कभी भ्रम हो आता कि आँटी बोल दी हों। हमेशा बंद कलाई की शर्ट पहनते जो हल्के शेड में होतीं और वैसा ही लंबा-चौड़ा चार बालिश्त का रूमाल। सलेटी जूतों में भूरे-भूरे फूल कढ़े होते जो मुझे खास आकर्षित करते। कभी-कभार ही मेरा उनसे सामना होता। मुझसे ना के बराबर बोलते बहुत ज्यादा तो बस 'हाय गुड़िया, कैसी हो... ?' और गालों पर हल्की सी थपकी दे कर भितरा जाते। उनके ऑफिस से लौटते ही आँटी मुझे विदा कर देतीं। अंकल वे बोल ही मुझ पर छाए रहते। ऐसी पुर खुलूस, पुर नूर जोड़ी हमारे मोहल्ले में एक भी ना थी, शायद इसी कारण हमारे लोग उनसे द्वेष और ईर्ष्या रखते थे।

और उनके यहाँ आने-जाने से घबराते थे। इसी कारण आँटी-अंकल भी मोहल्ले वालों से कोई संबंध नहीं रखते थे। खुद मेरा घर भी मम्मी-पापा की बर्तनोंवाली टंकार से गूँजता रहता। जिससे उदास हो कर मेरा मन आँटी-अंकल की तरफ भागता। जहाँ पुरनम झील बहती थी। गोशा-गोशा महकता, दोनों जन जैसे चांदी के कबूतर।

यूँ, महीनों बीत गए। एक सुबह मैं स्कूल के लिए तैयार होने के लिए छत पर सूख रही अपनी यूनिफार्म उतारने गई जो मम्मी रात को धुलकर फैलाकर ऊपर भूल गई थीं। लेकिन गली पार दूर पर मेरी नजर पड़ी तो अटक गई जैसे आँटी के घर के सामने मुझे भीड़-भड़कम मालूम हुई। हमारे घरों के बीच वॉकिंग डिस्टैंस ही थी।

मैं दौड़ गई।

'हा... य... ' मेरे पाँव थर्रा गए, पुलिस की जीप... ? भीड़ चीरकर नीचे ही नीचे सबसे आगे जा खड़ी हुई। दो जन वहाँ नए थे। एक बुजुर्ग महिला, एक बुजुर्ग पुरुष। महिला

आँटी को कोस रही थी 'कलमुँही, तुझे मेरा ही घर मिला था बर्बाद करने को... माँ-बाप ने छुट्टा छोड़ दिया है मुँह काला करने के लिए... ' और बहुत कुछ। जबकि पुरुष उन्हें शांत करने का प्रयास कर रहा था।

तभी घर के भीतर से चार सिपाही निकले। एक के हाथ में कुछ पैकेट थे। आँटी-अंकल सिर झुकाए किसी अपराधी की तरह खड़े थे। आँटी को पुलिस के एक आदमी ने संकेत किया तो वह घर के दरवाजे में ताला लगाने लगी फिर पीछे मुड़ी तो एक प्यार में डूबी मीठी नजर मुझ पर डालीं और जा कर पुलिस की गाड़ी में बैठ गईं। वो बुजुर्ग महिला व पुरुष भी। मेरी आँखें भर आईं। पास खड़ी अपनी मित्रा-मंडली की सबसे सीनियर लड़की तन्नो से मैंने पूछा - 'तन्नो दी, क्या हुआ... आँटी-अंकल को पुलिस क्यूँ ले गई... ?'

तन्नो दी धीमे से मुस्काई, फिर झुककर कान में फुसफुसाई, 'तेरे... अंकल हैं... ना... तेरे अंकल हैं ना... फिर जैसे मेरे कान में भुलभुल उँडेल दिया... मैं उछल पड़ी... ।

'उई... माँ... ' दाँतों तले उँगली दबाकर सरपट भागी आवाज लगाती दौड़ी जा रही थी

'ओ चन्दो... अन्नू... कामू... शेखू... नंदू... सुनोना... चबूतरे पर आओ ना... '

मेरी चिचियाहट सुन सभी आधी-अधूरी यूनिफार्म में भाग-भागकर चबूतरे से सटकर खड़े हो गए। मैं बीच चबूतरे के ऊपर।

'क्या बात है छोटी... ?'

'नंदू... वो है ना... वो है ना... नंदू... '

'अरे जल्दी बोल, देखती नहीं हमें स्कूल की देर हो रही है।'

'नंदू भैया... वो जो सामने घर है ना... आँटी-अंकल का... '

'हाँ... हाँ, तो कुछ बोल... ' सब झुँझलाए... ।

'उसमें वो अंकल हैं ना... वो... वो आदमी नहीं औरत हैं... '

सब हू-हू कर हँस पड़े - 'सुबह-सुबह तेरा दिमाग चल गया है, या सपना देख आई है। नाश्ता-वाश्ता नहीं किया क्या... '

'मैं सच कह रही हूँ, माँ कसम, तन्नो दी से पूछ लो... '

सब हड़बड़ भागे। मैं वहीं चबूतरे पर आलथी-पालथी मारे बैठ गई और दूर पर छटती हुई भीड़ देखने लगी। अंकल के शूज, रुमाल... धुनी हुई रुई सा कोमल मनोहर चेहरा और समंदरी आँखें याद करते-करते मैं रो पड़ी। मुझे विश्वास नहीं हो रहा था... । बार-बार रो पड़ती...

'अंकल, तुम ठीक-ठाक तो थे, औरत क्यूँ बन गए... ?

—— X ——